भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क रोटी है

इन दिनों अराजकता, लोकतंत्र, उम्मीद और क्रांति जैसे ढेर सारे शब्द सुनने को मिलते रहते हैं. राजनीति की इस नई हलचल के बीच हिंदी के उस कवि को याद करना नामुनासिब नहीं होगा जिसे अराजक कहा गया लेकिन, जिसने अपनी कविता में बिल्कुल जलते हुए अंदाज़ में शोलों की तरह सवाल उठाए थे. करीब आधी सदी पहले सुदामा पांडेय यानी धूमिल ने 'पटकथा' नाम की वह कविता लिखी जिसने भारत के संसदीय लोकतंत्र को, चुनावी राजनीति को, आम आदमी की विवशता को, मध्यवर्ग के आपराधिक चरित्र को और तार-तार होते हिंदुस्तान को इस तरह देखा जैसे पहले किसी ने नहीं देखा था.

हिंदी में लंबी कविताओं का ज़िक्र छिड़ता है तो सबसे पहले मुक्तिबोध की वे कविताएं याद आती हैं जिनमें आज़ादी के बाद दिखने वाले अंधेरे की घुटन अलग तरह की वेदना की तरह रिसती हुई सामने आती हैं. लेकिन मुक्तिबोध की अंतर्घनीभूत पीड़ा से बिल्कुल अलग धूमिल का बेहद मुखर आक्रोश कुछ इस तरह फूटता और हमसे टकराता है कि हम अपने भीतर एक झनझनाहट सी महसूस करते हैं.

इस झनझनाहट का कुछ वास्ता इस बात से भी है कि धूमिल कितनी सहजता से कैसी-कैसी सच्चाइयों का परदा हटा देते हैं-'यद्यपि यह सही है कि मैं / कोई ठंडा आदमी नहीं हूं / मुझमें भी आग है- / मगर वह / भभक कर बाहर नहीं आती / क्योंकि उसके चारों तरफ़ चक्कर काटता / एक पूंजीवादी दिमाग़ है / जो परिवर्तन तो चाहता है / मगर आहिस्ता-आहिस्ता / कुछ इस तरह कि चीज़ों की शालीनता बनी रहे / कुछ इस तरह कि कांख भी ढंकी रहे / और विरोध में उठे हुए हाथ की / मुट्ठी भी तनी रहे./ और यही वजह है कि बात / फ़ैलने की हद तक / आते-आते रुक जाती है / क्योंकि हर बार / चंद टुच्ची सुविधाओं के लालच के सामने / अभियोग की भाषा चुक जाती है.'

मुक्तिबोध के 'अंधेरे में' के भीतर आधी रात को डोमाजी उस्ताद के पीछे-पीछे चलने वाले पत्रकार, सैनिक, ब्रिगेडियर, जनरल धूमिल की पटकथा में बिल्कुल परिभाषित कर दिए जाते हैं- 'वे वकील हैं. वैज्ञानिक हैं. / अध्यापक हैं. नेता हैं. दार्शनिक / हैं. लेखक हैं. कवि हैं. कलाकार हैं. / यानी कि- / कानून की भाषा बोलता हुआ / अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है.'

वैसे तो धूमिल का सारा काव्य विधान जैसे नसों को लगभग तड़का देने वाली भाषा में बना है, लेकिन 'पटकथा' उस प्रक्रिया को चरम तक ले जाने वाली कविता है. 'सुनो ! / आज मैं तुम्हें वह सत्य बताता हूं /

जिसके आगे हर सच्चाई / छोटी है. इस दुनिया में / भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क / रोटी है. / मगर तुम्हारी भूख और भाषा में / यदि सही दूरी नहीं है / तो तुम अपने-आप को आदमी मत कहो / क्योंकि पशुता- / सिर्फ पूंछ होने की मजबूरी नहीं है'- धूमिल कहते हैं और यह कविता अचानक मार्मिक हो उठती है.

इन सबके बीच, कविता में नेताओं के वादों से छला हुआ, भूख की आग में जला हुआ, चुनाव दर चुनाव देखता हुआ, उम्मीदों के चीथड़े पहने हुए 'खून और आंसू से तर चेहरा' लिए हुए जैसे एक पूरा मुल्क बोलता है,'दुखी मत हो. यही मेरी नियति है. / मैं हिंदुस्तान हूं. जब भी मैंने / उन्हें उजाले से जोड़ा है / उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है / इसी तरह तोड़ा है.'

यह धूमिल की पटकथा है- भूख, बेचैनी, गुस्से, यथार्थ और सपने के बीच बनती हुई- समाजवाद से लेकर नक्सलबाड़ी तक आती-जाती हुई, संविधान से लेकर संसद तक सवाल खड़े करती हुई और अंतत : एक वेधक उदासी में विसर्जित होती हुई- 'मेरे सामने वही चिर-परिचित अंधकार है / संशय की अनिश्चयग्रस्त ठंडी मुद्राएं हैं / हर तरफ़ / शब्दवेधी सन्नाटा है. /....घृणा में / डूबा हुआ सारा का सारा देश / पहले की ही तरह आज भी / मेरा कारागार है.'

आज़ादी के लिबास में छुपी हुई गुलामी और लोकतंत्र की छाया में चल रहे शोषण और दमन की यह 'पटकथा' अभी ठीक से पढ़ी जानी बाकी है- लेकिन इसे पलटते ही जैसे एक आग सी सुलगने लगती है, एक बेचैनी सी घेरने लगती है. वैसे तो धूमिल का पूरा संग्रह ही, लेकिन इस संग्रह 'संसद से सड़क तक' की यह आख़िरी कविता ज़रूर पढ़िए.

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ़ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ–
'यह तीसरा आदमी कौन है ?'
मेरे देश की संसद मौन है।

साभार – https://satyagrah.scroll.in/ से